International Journal of Sanskrit Research 2024; 10(4): 26-30

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2024; 10(4): 26-30
© 2024 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 28-05-2024
Accepted: 29-06-2024

डॉ0 बीना रानी
असिस्टेंट प्रोफेसर–संस्कृत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय कमान्द,
टिहरी गढ़वाल, उत्तराखंड, भारत

Corresponding Author:
डॉ0 बीना रानी
असिस्टेंट प्रोफेसर–संस्कृत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय कमान्द,
टिहरी गढ़वाल, उत्तराखंड, भारत

संस्कृत साहित्य परम्परा में सौन्दर्यबोध : एक परिशीलन

डॉ0 बीना रानी

सारांश
देववाणी संस्कृत सृष्टि के उत्पत्तिकाल से ही भारतीय संस्कृति को अपनी दिव्य, निर्मल एवं अलौकिक ज्ञानगंगा से निरन्तर पुष्पित–पल्लवित करती आई है। संस्कृत भाषा ने 'विश्वबन्धुत्व' एव 'वसुधैवकुटुम्बकम्' के आदर्श को स्थापित कर अपनी अमूल्य ज्ञानपरम्परा के प्रतिनिधि ग्रन्थरत्नों के प्रकाश से समस्त विश्व के कल्याणार्थ धर्म, दर्शन, अध्यात्म, नैतिकता की एक नई अलख जगाकर मानव की वैयक्तिक, सामाजिक एवं वैश्विक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है। यह भाषा प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाओं की जननी होने के साथ ही साथ सदैव से सभी भाषाओं को सूत्रबद्ध करने वाली एक दृढ़ कड़ी रही है। वैदिक संस्कृति से लेकर लौकिक संस्कृति पर्यन्त संस्कृत वाङ्मय के प्रत्येक ग्रन्थ में एक विशिष्ट सौन्दर्य समन्वित है जो हमें कभी वेदों की स्तुतिपरक ऋचाओं में, कभी उपनिषदों के गूढ़ रहस्यात्मक तत्त्वों में, कभी स्मृतिग्रन्थों में प्रतिबिम्बित सामाजिक वर्णन में, कभी रामायण–महाभारत सदृश महाकाव्यों के लोक कल्याणकारी उपदेशों में और कभी कालिदास–माघ–भारवि–भास आदि अनेक कवियों के काव्य वैशिष्ट्य में दृष्टिगोचर होता है। वैदिक ऋषि 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की कल्याणकारी अवधारणा का समन्वय सौन्दर्य में मानते हुए सौन्दर्य को परमसत्ता के गुणों के रूप में देखते हैं। यह सौन्दर्य ही सौन्दर्य चेतना के नाम से अभिहित किया जाता है। सौन्दर्य चेतना 'सौन्दर्यबोध' की वह भावनात्मक अवस्था है जो मनुष्य को सदैव मनोरमता के प्रति आकर्षित करती है। 'सौन्दर्यबोध' में प्रयुक्त 'सौन्दर्य' पद भारतीय वाङ्मय के रुचिर, शोभन, कान्त, साधु, मनोज्ञ, मंजुल, ललित, काम्य, कमनीय आदि विभिन्न वाचक शब्दों को द्योतित करता है। सौन्दर्य के मूल में प्रेम की भावना एवं कामना प्रत्यक्ष रहती है। पाश्चात्य सौन्दर्यबोध परम्परा सौन्दर्य की उपयोगितावादी, सुखवादी एवं वस्तुवादी धारणाओं पर विशेष बल देती है जबकि भारतीय परम्परा में सौन्दर्य के रूप में मानवीय रूप–आकार को महत्त्व न देकर सौन्दर्य प्रभाव को ध्यान में रखकर प्रकृति सौन्दर्य को ही आदर्श माना गया है।

कूटशब्द : संस्कृत वाङ्मय, वैदिक और लौकिक ग्रन्थ, सौन्दर्यबोध।

प्रस्तावना
वैदिककाल से लेकर लौकिक काल तक संस्कृत भाषा के माध्यम से ही वाङ्मय की विभिन्न विधाओं का उद्भव और विकास होता आया है। देववाणी हिमालय से लेकर कन्याकुमारी पर्यन्त किसी न किसी रूप में काव्य–रचनाओं के सृजन और गुरु–शिष्य परम्परा में शिक्षण की एक समुन्नत भाषा के रूप में समादृत रही है। भारतीय संस्कृति एवं विचारधारा ने इसी भाषा के माध्यम से अपनी अमूल्य ज्ञानपरम्परा के प्रतिनिधि ग्रन्थरत्नों के प्रकाश से समस्त विश्व के कल्याणार्थ धर्म, दर्शन, अध्यात्म, नैतिकता की एक नई अलख जगाकर मानव की वैयक्तिक, सामाजिक एवं वैश्विक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है। संस्कृत साहित्य की समृद्ध परम्परा में संस्कृत का धातुपाठ अति प्राचीन होने पर भी नित्य अनुपम एवं नव्य सृजनशक्ति से ओत–प्रोत है और नवीन शब्दों को गढ़ने में सर्वथा समर्थ रहा है।

विश्व की समस्त प्राचीन भाषाओं में शीर्ष स्थान पर सुशोभित होकर इस भाषा ने विश्वसाहित्य की पहली पुस्तक 'ऋग्वेद' को देदीप्यमान रत्न के समान प्रसूत किया है। भारतीय संस्कृति की रहस्यात्मकता के विस्तृत ज्ञान को उद्घाटित करती यह भाषा अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाओं की जननी होने के साथ ही साथ सभी भाषाओं को सूत्रबद्ध करने वाली एक दृढ़ कड़ी है। पाश्चात्य विद्वान भी इसके अतिशय समृद्ध एवं विपुल साहित्य को देखकर आश्चर्यचकित होते रहे हैं। सहस्राब्दियों से प्रतिष्ठा प्राप्त यह देववाणी समग्र भारत को सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता में आबद्ध करने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम रही है।

संस्कृत वाङ्मय का स्वरूप

'वाङ्मय' साहित्य शब्द के विस्तृत अर्थ को ही द्योतित करता है। संस्कृत वाङ्मय वैदिक ग्रन्थों; यथा–चारों वेदों के संहिता–ब्राह्मण–आरण्यक–उपनिषद् नामक प्रभेदों, षड्वेदांगों, कल्पसूत्रों, स्मृतिग्रन्थों, धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों, वेदांग सम्बद्ध ग्रन्थों व प्रातिशाख्यों आदि का विशाल भण्डार है। उपवेद के रूप में चिकित्साशास्त्र का नाम आता है जिसमें आयुर्वेद विद्या के चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता आदि ग्रन्थों का प्रमुख स्थान रहा है। मानव जीवन को उन्नति की दिशा देने वाला प्रत्येक पक्ष; चाहे वह कला हो, विज्ञान हो, ज्योतिष हो, दर्शन हो अथवा गणित; संस्कृत वाङ्मय से भिन्न नहीं है। संस्कृत को परिमार्जित एवं परिशुद्ध रूप प्रदान करने में व्याकरण का अमूल्य योगदान व महत्त्व रहा है। पाणिनि रचित 'अष्टाध्यायी' नामक व्याकरणिक ग्रन्थ से तो सभी परिचित हैं जो 2500 वर्षों से प्रतिष्ठित माना गया है। त्रिमुनि व्याकरण (पाणिनी–कात्यायन–पतंजलि रचित व्याकरण), यास्ककृत निरुक्त, निरुक्तविद्या आदि व्याकरणशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

वैदिक एवं व्याकरणिक ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत वाङ्मय में दर्शनशास्त्र का वाङ्मय भी विशाल रूप में प्राप्त होता है। दर्शन परम्परा में षड् आस्तिक दर्शनों सहित अनेक आस्तिक–नास्तिक दर्शन हमें प्राप्त होते हैं जिनमें आत्मा–परमात्मा, जीवन–जगत, पदार्थ–मीमांसा, तत्त्वमीमांसा आदि के सन्दर्भ में प्रौढ़ विचार हुआ है। दर्शन सूत्र के टीकाकार के रूप में परमादृत शंकराचार्य का नाम संस्कृत साहित्य में अमर है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र, वात्स्यायन का कामसूत्र, भरतमुनि का नाट्यशास्त्र आदि अमूल्य ग्रन्थरत्न समस्त संसार के प्राचीन वाङ्मय में अमूल्य स्थान रखते हैं।

वैदिक वाङ्मय के अनन्तर सांस्कृतिक दृष्टि से वाल्मीकिकृत रामायण और व्यासकृत महाभारत सहित अष्टादश पुराणों, उपपुराणों आदि उच्च–आदर्श स्थापक पौराणिक ग्रन्थों से भारत की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक धरोहर निरन्तर समृद्ध हुई है तथा इसने भारतीय संस्कृति को एकसूत्रता में पिरोया है। तत्पश्चात् गद्य–पद्य के लाखों श्रव्य एवं दृश्य काव्यों की रचना हुई जो वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं; यथा–महाकवि कालिदासकृत विश्वप्रसिद्ध 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक। अश्वघोष, भास, भवभूति, बाणभट्ट, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, शूद्रक, विशाखदत्त आदि कवियों एवं नाटककारों को अपने–अपने क्षेत्रों में अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त है। सृजनात्मक नाटकों के विचार से भी भारत का नाट्यसाहित्य अत्यन्त समृद्ध है। साहित्यशास्त्रीय समालोचन पद्धति के अन्तर्गत नाट्यशास्त्र एवं साहित्यशास्त्र के अत्यन्त प्रौढ़, विवेचनपूर्ण व मौलिक ग्रन्थों का संस्कृत में निर्माण हुआ है।

निष्कर्षतः भारत की प्राचीन संस्कृत भाषा को अत्यन्त समर्थ, सम्पन्न एवं ऐतिहासिक महत्त्व की भाषा कहा जा सकता है। इस प्राचीन वाणी का वाङ्मय अत्यन्त व्यापक, सर्वतोन्मुखी, मानवतावादी एवं परम सम्पन्न होकर समस्त विश्व के प्राच्यविद्याप्रेमियों द्वारा प्रतिष्ठित रहा है।

सौन्दर्यबोध

'सौन्दर्यबोध' में 'सौन्दर्य' पद भारतीय वाङ्मय के विभिन्न वाचक शब्दों को द्योतित करता है; यथा–रुचिर, शोभन, कान्त, साधु, मनोज्ञ, मंजुल, ललित, काम्य, कमनीय आदि। सौन्दर्य चेतना मनुष्य की वह भावनात्मक अवस्था है, जिसे सौन्दर्यबोध कहते हैं। जब कोई वस्तु या कला भौतिक एवं मानसिक रूप से हमें इन्द्रिय आनन्द का अनुभव कराती है तो वह सौन्दर्य की वस्तु या कला कहलाती है और किसी कलाकृति या वस्तु को देखकर आनन्द की सृष्टि होने को सौन्दर्यबोध कहते हैं। सौन्दर्यशास्त्र मानव की कला, चेतना और उससे सम्बन्धित आनन्दानुभूति का विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत करता है। 'स्थेटिक्स' या सौन्दर्यशास्त्र से तात्पर्य सुन्दर के विषय में विचार या सौन्दर्यदर्शन से है जो कि सौन्दर्य चेतना की उपज है। सौन्दर्यबोध के दो स्वरूपों में बाह्य स्वरूप इन्द्रिय सुख और आन्तरिक स्वरूप आत्मिक अनुभव पर बल देता है। इसी आत्मिक सौन्दर्य से परमसत्य की प्राप्ति होती है। इसका प्रबल माध्यम ललित कलाएँ हैं जिसमें सर्वोत्तम कला संगीत है।

सौन्दर्यबोध में काव्यगत लालित्य विधान या रमणीयता को स्वीकार किया जाता है। सौन्दर्य का अवबोध साधारणतः तीन स्तरों पर होता है– प्रकृतिगत, लोकगत, कलागत। काव्य में सौन्दर्यबोध के उपयोग में कवि अपनी अर्जित बुद्धि व विवेक का प्रयोग करके प्राप्त ज्ञान, अनुभव, संवेदना व यथार्थ से वस्तु, दृश्य, पंक्ति एवं ध्वनि का शब्दांकन करते हैं। हिमशिखर, मानसरोवर, उषा, विभावरी, विहग, मृगशावक, झरना आदि की सुन्दरता में भी कला कहीं न कहीं अपने लिए सौन्दर्य खोज लेती है। सौन्दर्य तत्त्व चिन्तक विद्वानों ने सौन्दर्य का विमर्श दो प्रकार से किया है– प्रथम विषयगत, दूसरा विषयीगत। वस्तुतः सौन्दर्य को वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ दोनों ही मानना तर्कसंगत होगा। वस्तुनिष्ठता सर्वजन्य सुलभ है जबकि आत्मनिष्ठता मानसिक विशिष्टता पर निर्भर करती है। पहले में दृष्टि का आकर्षण तथा दूसरे में अन्तर्मन का आकर्षण प्रमुख होता है। सौन्दर्य का आत्मतत्त्व आकर्षण ही है। साहित्य में दोनों प्रकार की दृष्टियाँ प्राप्त होती हैं।

अतः सौन्दर्य काव्य का आधारभूत तत्त्व है जिसके बिना काव्य चमत्कृत नहीं होता।

भारतीय साहित्य में सौन्दर्यबोध

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र का वास्तविक एवं विकसित रूप काव्यशास्त्र है। सौन्दर्यशास्त्र स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित न होने पर भी काव्यशास्त्रीय मूल तत्त्वों के विविध पक्षों और अंगों के विवेचन–विश्लेषण में अत्यन्त सूक्ष्म व गहन स्थान रखता है। संस्कृत भाषा की शुद्धता, इसके शुद्ध उच्चारण से उत्पन्न होने वाला कम्पन, वैदिक ऋचाओं के सस्वर वाचन से उत्पन्न आनन्द, इसका त्रुटिहीन होना, पूरी तरह नियमबद्ध एवं अपवाद रहित होना ही इसका सौन्दर्य है। संस्कृत कवियों का सौन्दर्य दर्शन उनके गौरव के अनुरूप अत्यन्त समृद्ध एवं परिष्कृत है। सौन्दर्य एक गोचर तत्त्व है जो वस्तु या आलम्बन का गुण है। सौन्दर्य के मूल में प्रेम की भावना एवं कामना प्रत्यक्ष रहती है। सौन्दर्य में अंग–साम्य या सामंजस्य की धारणा निहित है। भारतीय साहित्य परम्परा में वैदिक और लौकिक भेद से सौन्दर्यबोध दो प्रकार का माना गया है–

वैदिक साहित्य में सौन्दर्यबोध

भारतीय मनीषियों की दृष्टि में सौन्दर्य एक अत्यन्त मूल्यवान् तत्त्व रहा है। वैदिक ऋषियों ने सौन्दर्य के विविध रूपों एवं छवियों का साक्षात्कार अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ किया था। ऋग्वेद में सौन्दर्य के लिए 'श्री' एवं 'चारु' शब्द का प्रयोग किए जाने का अनेक स्थलों पर वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक ऋषि सत्यं, शिवं और सुन्दरम् का समन्वय सौन्दर्य में मानते हुए सौन्दर्य को परमसत्ता के गुणों के रूप में देखते हैं। वे ईश्वर से सुन्दर वस्तुओं की प्राप्ति हेतु प्रार्थना करते हैं। ऋग्वेद में इन्द्र, रूद्र और विष्णु के विराट् एवं तेजस्वी रूपों का वर्णन अनेक ऋचाओं में मिलता है और उसमें सौन्दर्य के ऐन्द्रिय स्वरूप का स्पष्ट संकेत भी प्राप्त होता है। सौन्दर्य के मानव रूप की स्वीकृति वैदिक ऋचाओं में मिलती है। यजुर्वेद में सौन्दर्य के अभिप्राय से अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। वैदिक ऋचाओं में सौन्दर्य के मानस रूप का वर्णन है। वैदिक कवि सौन्दर्य के लौकिक–दिव्य, ऐन्द्रिक –आत्मिक दोनों रूपों का वर्णन करते हैं लेकिन उपनिषद् में केवल आत्मिक सौन्दर्य का वर्णन मिलता है। भारतीय दर्शन में सौन्दर्य चिन्तन के स्थान पर ब्रह्म, जीव, जगत, माया, मोक्ष आदि ही उसके प्रतिपाद्य विषय हैं जबकि उपनिषद् में अद्वैत भाव पर अधिक बल दिया गया है अर्थात् अनेकता में एकता और यही सामंजस्य सौन्दर्य का मूल लक्षण है। उपनिषदों में सौन्दर्य के दो लक्षण प्रकाश और आनन्द का वर्णन मिलता है इसी आधार पर आगे चलकर आचार्यों ने रस को

स्वप्रकाशानन्द कहा। समस्त प्राणियों में परम सुन्दर ईश्वर का आनन्दरूप ही व्याप्त है, आनन्द ही ब्रह्म है और उसी से जीवन है। तैत्तिरीयोपनिषद् में भी आनन्द और रस को ब्रह्म के समान माना गया है–

रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दीभवति।[1]

लौकिक साहित्य में सौन्दर्यबोध

संस्कृत साहित्य की लौकिक परम्परा में, विशेषकर उसकी काव्य परम्परा में वाल्मीकि, वेदव्यास, भवभूति, भारवि, श्रीहर्ष, बाणभट्ट, कालिदास आदि महाकवियों ने प्रकृति की जो रसमयी झांकी प्रस्तुत की है, वह अनुपम, अतुलनीय तथा अलौकिक है। उसके कण–कण में प्रकृति की आदिम सुवास है, मधुर संस्पर्श है और अमृतपायी जीवन दृष्टि है। सही अर्थ में प्रकृति संस्कृत काव्य की आत्मा, चेतना और जीवन शक्ति है। काव्यधारा की इस अलौकिक चेतना के पीछे विद्यमान जीवनी शक्ति ही प्रकृति है। आदिकवि वाल्मीकिकृत रामायण के अरण्यकाण्ड, माघकृत शिशुपालवधम्, भारविकृत किरातार्जुनीयम्, श्रीहर्षकृत नैषधीयचरितम्, बाणभट्टकृत कादम्बरी एवं कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तलम् में अनेक ऐसे प्रसंग हैं जो प्राकृतिक सौन्दर्य की रमणीय छटा को चित्रित करते प्रतीत होते हैं।

आदिकवि वाल्मीकिकृत 'रामायण' में सुन्दर शब्द सामान्य रूप से प्रयुक्त हुआ है– रामायण के एक भाग का नाम ही सुन्दरकाण्ड है। 'सुन्दर' की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से की गई है। सु+उन्द+अरन् जिसका शब्दार्थ है–नयनों को सिक्त करने वाला अर्थात् सुख देने वाला। 'रामायण' के बाद महाभारत ही ऐसा उत्कृष्ट महाकाव्य है जो जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, पारलौकिक आदि सभी पक्षों को आत्मसात् करता है। इस ग्रन्थ की महत्ता एवं गरिमा इस उक्ति के द्वारा स्पष्ट है– ''महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते।'' महाभारत में अनेक स्थलों पर प्राकृतिक सौन्दर्य की अनुपम छटा दृष्टिगोचर होती है। पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति में सहायक इस ग्रन्थ में कहा गया है–

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।[2]

गीता में सौन्दर्य, ऐश्वर्य आदि के लिए 'विभूति' शब्द का प्रयोग हुआ है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा, ''नान्तोऽस्मि मम दिव्यानां विभूतीनां।'' शंकराचार्य ने भी सौन्दर्यलहरी में सौन्दर्य वर्णन करते समय लावण्य, द्युति, विमल, आभा शब्दों का प्रयोग सौन्दर्य के अर्थ में किया है।

महाकवि कालिदास का सौन्दर्य दर्शन

आदिकवि वाल्मीकि, व्यास तथा कालिदास प्राचीन भारतीय इतिहास की अन्तरात्मा के प्रतिनिधि है और सब कुछ नष्ट हो जाने के बाद भी इनकी कृतियों में हमारी संस्कृति के प्राणतत्त्व सुरक्षित रहेंगे। भारतीय साहित्य की सर्वश्रेष्ठ विभूति, भारतीय साहित्य की दीपशिखा, देववाणी के अमरकवि महाकवि कालिदास के काव्य की कमनीयता, विलक्षण–सौन्दर्योन्मीलन तथा सरसता विश्वमानव को आकृष्ट करती है। कालिदास को सौन्दर्यवादी कवि कहा गया है क्योंकि उन्होंने अनेक रूपों में सौन्दर्य का निरूपण किया है। उनके विचार में जो सुन्दर है, वह सर्वथा सुन्दर है और उसे किसी प्रसाधन की आवश्यकता नहीं होती। उदाहरणार्थ, उन्होंने पार्वती के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया है– ''पार्वती का मुख जटाओं से भी उतना ही सुन्दर लगता है जितना कि सुन्दर वेणियों से अलंकृत होने पर लगता था।'' महाकवि कालिदासकृत कुमारसम्भवम् में भगवान शंकर माता पार्वती से कहते हैं–

यदुच्यते पार्वति! पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः।
तथाहि ते शीलमुदारदर्शने तपस्विनामप्युपदेशतां गतम्।।[3]

कालिदास के अनुसार सच्चा सौन्दर्य वह है जो पापवृत्ति की ओर अग्रसर न होकर सात्त्विकता की प्रेरणा देता है।

कालिदास सौन्दर्य प्रेम के भावुक कवि हैं, जिन्होंने सौन्दर्य को दैवी विभूति मानकर नारी और प्रकृति में साम्य स्थापित किया है। उनकी दृष्टि सौन्दर्य की कोमल भावनाओं को पहचानने और चित्रित करने में अत्यन्त निपुण हैं। उनका रसाप्लावित हृदय इन सौन्दर्य दृश्यों में झांकता हुआ दिखाई देता है। महाकवि ने सौन्दर्य के अन्तः और बाह्य दोनों पक्षों को समान रूप से ग्रहण कर सौन्दर्यात्मक आदर्श, सौन्दर्य दृष्टि और सृष्टि का अतुलनीय परिचय दिया जो अत्यन्त प्रशंसनीय है। भारतीय परम्परा में सौन्दर्य के रूप में मानवीय रूप–आकार को नहीं बल्कि सौन्दर्य प्रभाव को ध्यान में रखकर प्रकृति सौन्दर्य को ही आदर्श माना गया है। कवि की कीर्ति कौमुदी भारतीय साहित्य को युगों से आलोकित कर रही है और युगों तक करती रहेगी, ऐसे ही कवियों के लिए भर्तृहरि ने कहा होगा–

जयन्ति ते सुकृतिनः रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्।।[4]

भारवि का सौन्दर्य दर्शन

भारतीय साहित्य में कवि 'भारवि' ने भी सौन्दर्य की स्वाभाविकता पर बल दिया है। उन्होंने सौन्दर्य को वस्तुनिष्ठ मानते हुए यह दिखाया है कि जो रम्य है, सुन्दर है उसके लिए कोई आहार्य गुण अपेक्षित नहीं होता। वे अप्सराओं के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि– ''अर्जुन की तपस्या को भंग करने के लिए स्वर्ग से आती हुई अप्सराओं का सौन्दर्य धूप के कारण कुछ मलिन पड़ गया क्योंकि प्रस्वेद के कारण प्रसाधन धुल–पुंछ गये, फिर भी उनके सौन्दर्य की चारुता अप्रभावित रही। महाकवि भारवि वस्तुओं में सौन्दर्य न मानकर प्रेमी के हृदय में सौन्दर्य मानते हैं– ''वसन्तहि प्रेम्णि गुणान्वस्तुषु।''

बाण का सौन्दर्य दर्शन

बाण की कृतियों में विविध वर्णों से स्वर चित्रों का अपूर्व संकलन मिलता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अत्यन्त उच्छ्वसित वाणी में इन चित्रों की वर्ण छटा का स्तवन किया है। कादम्बरी तथा हर्षचरित में चित्रों के विविध भेदों, रचना प्रक्रिया आदि के उल्लेख मिलते हैं।

माघ का सौन्दर्य दर्शन

कवि माघ ने सौन्दर्य के विषय में नवीन और प्रभावशाली धारणा व्यक्त की है। उनकी दृष्टि में सौन्दर्य वह है जो क्षण–क्षण में नवीनता प्राप्त करे–**''क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपेति तदेव रूपं रमणीयतायाः।''[5]** उन्होंने सौन्दर्य के आन्तरिक गुण को महत्त्व दिया है। माघ ने सौन्दर्य की अभिनव कल्पना प्रस्तुत की है।

भवभूति का सौन्दर्य दर्शन

संस्कृत कवि भवभूति मूलतः भावना के कलाकार है। उन्होंने भी सौन्दर्य का वर्णन करते समय प्रकृति के विभिन्न उपादानों को ध्यान में रखा है। भवभूति द्वारा अंकित भौतिक सौन्दर्य के चित्र भव्य हैं, इसमें सन्देह नहीं। भारतीय साहित्य, संगीत, चित्रमूर्ति और वास्तुकलाओं का मौलिक तात्पर्य सौन्दर्य से रहा है और उसके विविध रूपों में सौन्दर्य की अभिव्यंजना होती रही है।

श्रीहर्ष का सौन्दर्य दर्शन

श्रीहर्ष मन की संलग्नता को सौन्दर्य का आधार मानते हैं। उनका कहना है–

यथा यूनस्तद्वत्परमरमणीयाऽपिरमणी।
कुमाराणामन्तःकरणहरणं नैव कुरुते?

इस प्रकार संस्कृत काव्य परम्परा में अधिकांश कवियों ने अपनी काव्य रचनाओं में सौन्दर्य को सर्वोत्कृष्ट तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। नीतिशतककार भर्तृहरि ने साहित्य ज्ञान एवं साहित्यिक सौन्दर्य पर विशेष बल देते हुए साहित्य, संगीत और कला से रहित मनुष्य को नरपशु की संज्ञा प्रदान करते हुए कहा है–

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुःपुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानः तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।[6]

काव्यशास्त्रीय परम्परा में सौन्दर्यबोध

'काव्यशास्त्र' में काव्य और साहित्य के दार्शनिक, वैज्ञानिक एवं अलंकृत स्वरूप की विद्यमानता होती है। यह विभिन्न काव्यकृतियों के विश्लेषण के आधार पर समय–समय पर उद्भावित सिद्धान्तों की ज्ञानराशि है। काव्यशास्त्र के लिए सर्वप्रथम 'साहित्यशास्त्र', 'अलंकारशास्त्र' 'समीक्षाशास्त्र', काव्यालंकार आदि प्राचीन नामों का व्यवहार होता था। कालान्तर में इसके कई नामकरण किये गये और युगानुरूप परिस्थितियों के अनुसार काव्य व साहित्य का शिल्प परिवर्तित होता गया। राजशेखर के अनुसार तर्क, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति नामक चतुर्विद्याओं के बाद काव्यविद्या अथवा साहित्य विद्या को पंचमी विद्या माना गया है–

''पंचमी साहित्य विद्या इति यायावरीयाः।''[7]

भारतीय काव्यशास्त्र विशेष रूप से सौन्दर्य से सम्बद्ध रहा है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र, भामह ने काव्यालंकार रुद्रट ने काव्यालंकारसारसंग्रह, कुन्तक ने वक्रोक्तिजीवित, क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा, दण्डी ने काव्यादर्श, मम्मट ने काव्यप्रकाश, विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण तथा पंडितराज जगन्नाथ ने रसगंगाधर आदि काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में सौन्दर्य के विभिन्न पक्षों को प्रतिपादित किया है।

रस सम्प्रदाय में रस और सौन्दर्य पर विस्तृत विचार किया गया है। भरतमुनि से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक सभी रसवादी आचार्यों ने रस और व्यापक समीकरण को पूरी विद्वता के साथ दर्शाया है। भारतीय काव्यतत्त्वज्ञ उस सौन्दर्य की अनुभूति को रसानुभूति कहते हैं जो पूर्णतः मानसिक है, जिसके लिए साधारणीकरण आवश्यक है। भारतीय सौन्दर्य की अवधारणा का निरूपण करते हुए उसे ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है–

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।
विद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।।[8]

भरतमुनि का सौन्दर्य दर्शन

राजशेखर के मतानुसार नन्दिकेश्वर रस सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक थे किन्तु उनका कोई ग्रन्थ अथवा सिद्धान्त उपलब्ध न होने के कारण नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि ही रस सम्प्रदाय के प्रणेता माने गए। उन्होंने नाट्यशास्त्र के षष्ठ–सप्तम अध्यायों में विस्तारपूर्वक रस का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है। भरतमुनि का रससूत्र इस प्रकार है– ''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।''[9]

स्थायी भाव के विषय में उनका कथन है –

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।।
विभावाऽनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः।।[10]

भरतमुनिकृत 'नाट्यशास्त्र' में काव्य के दस सौन्दर्य गुणों का वर्णन मिलता है। सुन्दर के लिए ललित और विविध कलाओं आदि के सन्दर्भ में सौन्दर्य के सिद्धान्त, लक्षण व गुणों का परिचय मिलता है। 'नाट्यशास्त्र' में सभी सौन्दर्यगुणों के सन्दर्भ में ललित, विद्वत्, शोभा, दीप्ति, माधुर्य, धैर्य, लावण्य आदि का विवेचन मिलता है। इस ग्रन्थ में गायन, वादन, नृत्य के सौन्दर्य विधान का वर्णन करते हुए कलाओं के सौन्दर्य पर सूक्ष्मता से विचार किया गया है।

भामह का सौन्दर्य दर्शन

भामह ने काव्यालंकार में अपना सौन्दर्य विषयक मन्तव्य प्रकट करते हुए लिखा है कि रमणी के नेत्रों में लगे काले अंजन के सदृश कहीं आश्रय के सौन्दर्य के कारण बोध रमणीयता धारण कर लेते हैं–

किंचिदाश्रयसौन्दर्याद्धते शोभामसाध्वपि।
कान्ताविलोचनन्यस्तं मलीमसमिवांजनम्।।[11]

दण्डी का सौन्दर्य दर्शन

दण्डी ने काव्यादर्श में अपना सौन्दर्य विषयक मत देते हुए वर्णन पद्धति के सन्दर्भ में 'सुन्दर' शब्द का प्रयोग करते हुए कहा है–

नायकं प्रागुपन्यस्य गुणतः तेन विद्विषाम्।
निराकरणमित्येष मार्गः प्रकृतिसुन्दरः।।[12]

अर्थात् पहले नायक के गुणों का वर्णन कर, बाद में प्रतिनायक का और नायक के द्वारा उसके निराकरण का वर्णन किया जाए। काव्यादर्शकार ने काव्य की शोभा को बढ़ाने वाले तत्त्वों में अलंकारों को विशेष स्थान प्रदान करते हुए कहा है–

काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते। [13]

वामन का सौन्दर्य दर्शन

वामन के अनुसार काव्य का सार तत्त्व अलंकार है। उन्होंने अपने 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' ग्रन्थ में सौन्दर्य को काव्य का प्राण[14] मानते हुए काव्यसौन्दर्य और अलंकार[15] की एक ही स्थिति को स्वीकार किया है। साथ ही काव्य की शोभा को बढ़ाने वाले धर्मों को गुणसंज्ञा प्रदान की है–

काव्यशोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः।[16]

कुन्तक का सौन्दर्य दर्शन

कुन्तक के अनुसार, ''अर्थ, शब्द और अलंकार इन तीनों के उत्कर्ष के अतिरिक्त प्रतिगुण या रंजकत्व के कारण सुन्दर कुछ अपूर्व ही सहृदय आह्लादक तत्त्व है।''

वाच्यवाचकवक्रोक्तित्रितयातिशयोत्तरम्।
तद्विदाह्लादकारित्वं किमप्यामोदसुन्दरम्।।[17]

मम्मट का सौन्दर्य दर्शन

मम्मट मानते हैं कि वस्तु में विद्यमान सौन्दर्य के कारण तथा आस्वाद का विषय होने से सौन्दर्य अन्य अनुमीयमान विषयों से विलक्षण होता है–

''अनुमीयमानोऽपि वस्तुसौन्दर्यबलाद्रसनीयत्वेनान्यानुमीयमान विलक्षणः।''[18]

विश्वनाथ का सौन्दर्य दर्शन

आचार्य विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण नामक ग्रन्थ में अलंकार आदि को विशेष तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हुए कहा है–

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत्।।[19]

उन्होंने व्यंग्यकाव्य को सुन्दर काव्य के रूप में तथा व्यंग्येत्तर काव्यों को असुन्दर के रूप में प्रतिपादित करते हुए काव्य के आठ भेदों को वर्णित किया है–

व्यंग्यमसुन्दरमेवं भेदास्तस्योदिता अष्टौ।[20]

पंडितराज जगन्नाथ का सौन्दर्य दर्शन

पंडितराज जगन्नाथ काव्यशास्त्रीय परम्परा के ऐसे प्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने रमणीयता का उल्लेख अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में किया है। उनके अनुसार जिनके ज्ञान से लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति होती है वही अर्थ रमणीय है। वे रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्दों को काव्य कहते हैं–

रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।[21]

भट्टनायक का सौन्दर्य दर्शन

भट्टनायक ने सौन्दर्यानुभूति को आनन्दात्मक अनुभव बताया है, जिसमें सत्व गुणों की प्रधानता रहती है। उन्होंने सौन्दर्यानुभूति को बौद्धिक आनन्द के रूप में माना है और साथ ही इसमें रज व तम का मिश्रण भी स्वीकार किया है। इनके विचार से भावनात्मक आनन्द, कल्पनात्मक आनन्द और बौद्धिक आनन्द तीनों के मिश्रण से सौन्दर्यानुभूति होती है। भट्टलोल्लट ने स्थायी भाव की लौकिक अनुभूति को सौन्दर्यानुभूति बताया है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सभी भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों ने शब्दभेद से सौन्दर्य को शुद्ध–चित्त, दिव्य–चित्त अथवा आत्म–चैतन्य के रूप में देखा है, जो परमात्मा स्वरूप है। सभी विद्वानों ने बाह्य या रूपगत सौन्दर्य की अपेक्षा आत्मगत सौन्दर्य को उत्कृष्ट माना है। जब मनुष्य अपने चित्त को परमात्मा में संयुक्त करता है तब उसे सौन्दर्यानुभूति होती है और तदुपरान्त वह चिर आनन्द में लीन हो जाता है। संस्कृत साहित्य की समृद्ध परम्परा में विद्यमान सौन्दयबोध मानवीय जीवन की उत्कृष्टता हेतु व्यवहार में शालीनता, शिष्टता, संवेदनशीलता, सृजनात्मकता, विवेकशीलता आदि गुणों का आधान करता है। तदुपरान्त मानव जीवन में व्याप्त समस्त नैराश्य एवं अविश्वास; आशा, विश्वास व सकारात्मकता में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार साहित्यिक सौन्दर्यबोध मानव की वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक एवम् आध्यात्मिक उन्नति हेतु एक नए दृष्टिकोण व नए कर्त्तव्यपथ का मार्ग प्रशस्त करता है।

सन्दर्भ

1. तैत्तिरीयोपनिषद् – 2/7/1
2. महाभारत – 1/62/53
3. कुमारसम्भवम् – 5.36
4. नीतिशतकम् – श्लोक 24
5. शिशुपालवधम् – 4/17
6. नीतिशतकम् – श्लोक सं0 12
7. राजशेखरकृत काव्यमीमांसा।
8. साहित्यदर्पण, 3/2
9. नाट्यशास्त्र, षष्ठ अध्याय, पृ0 228
10. काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, पृ0 119
11. काव्यालंकार – 1.55
12. काव्यादर्श 1/21
13. काव्यादर्श 2.1
14. ''सौन्दर्यमलंकारः'' – का0सू0वृ0 1.1.2
15. ''काव्यं ग्राह्यमलंकारात्'' – का0सू0वृ0 1.1.1
16. का0सू0वृ0 – 3.3.1
17. कुन्तककृत वक्रोक्तिजीवितम्।
18. काव्यप्रकाश, पृ0 103
19. साहित्यदर्पण – 10.1
20. साहित्यदर्पण – 4.14
21. रसगंगाधर – 1.1